आदिवासी लोक विमर्श
(साहित्य, रंगमंच, सिनेमा)

संपादक
मनीष कुमार

एकेडमिक पब्लिशिंग नेटवर्क

Adivasi Lok Vimarsh (Sahitya, Rangmanch, Cinema)
Edited By Manish Kumar

प्रकाशक : एकेडमिक पब्लिशिंग नेटवर्क
प्रथम तल, खसरा नं. 1105/642
नया नं. 16–ए, मंडावली/फज़लपुर
मंडावली, दिल्ली–110092
ई–मेलः apnetwork18@gmail.com
मोबाईल नं.: 9667062977, 7678118393

Branch : Kayakuchi, Barpeta, Assam-781352
Mob No.: 7002856673

© सर्वाधिकार : संपादक
प्रथम संस्करण : 2020
आईएसबीएन : 978-81-939315-9-2
मूल्य : ₹ 400
शब्द–संयोजन : शिव शक्ति इंटरप्राइजेज
नई दिल्ली–110016
मुद्रक : कॉम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली–110002

विषय–सूची

सम्पादकीय	मनीष कुमार	7–9

भाग (क)
आदिवासी विमर्श

लोक संस्कृति, लोक शब्दावली, लोक विश्वास, लोक नृत्य की सशक्त अभिव्यक्तिः 'ग्लोबल गाँव के देवता'	डॉ.जगमोहन सिंह	13–24
जनजातीय संक्रमण : प्रभाव एवं समुदाय का भविष्य	डॉ. निस्तार कुजूर, डॉ. रश्मि कुजूर	25–38
हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवनः यथार्थ और अनुभूति	डॉ. शशि कुमार शर्मा	39–48
हिन्दी साहित्य में आदिवासियों का बदलता परिवेश (21वीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)	गुरमीत सिंह	49–56
आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक परिदृश्य	डॉ. अमित कुमार साह	57–65
आदिवासी समुदाय पर धार्मिक वैश्वीकरण का प्रभाव	जितेन्द्र सोनकर	66–87
भारत के आदिवासी तथा उनकी समस्याएं	अरुण कुमार वर्मा	88–94
आदिवासी संघर्षशील चेतना के विकास में लोकगीतों का योगदान (विशेष संदर्भ– मध्यप्रदेश के बारेली लोकगीत)	सुरेश डुडवे	95–101

आदिवासी हिंदी कविता में प्रतिबिंबित स्त्री जीवन का यथार्थ	पूजा गुप्ता	102—110
रमणिका गुप्ता के कथा साहित्य में आदिवासी जीवन संघर्ष एवं स्त्री	शैलेश यादव	111—125
आदिवासी समाज में संस्कृति का महत्वः कल और आज	अनीश कुमार	126—137
आदिवासी आंदोलनों की पृष्ठभूमि विशेष संदर्भ 'आदिवासी सत्ता पत्रिका'	बबिता कुमारी	138—148
'उत्तर पूर्व' मणिपुर के अस्तित्व का प्रश्न	प्रदीप कुमार सिंह	149—157
आदिवासी विमर्श और साहित्यिक दृष्टि	काजल कुमारी सिंह	158—164
बाजत अनहद ढोल उपन्यास में चित्रित आदिवासी विद्रोह	सतीश चन्द्र	165—170
आदिवासी विस्थापनः एक समस्या	बिनीता कुमारी	171—179
चुनौतियों के समक्ष आदिवासी विमर्श	नितीश कुमार	180—189
हिंदी उपन्यासों में आदिवासी यथार्थ	राजकुमार	190—200

भाग (ख)
रंगमंचीय प्रतिरोध

प्रतिरोध का नाटक बनाम प्रचारतंत्र का नाटक	डॉ. सतीश पावड़े	203—206

आदिवासी समाज में संस्कृति का महत्व : कल और आज

अनीश कुमार

भारत के ज़्यादातर आदिवासी समाजों में किसी भी प्रकार की सामाजिक विभिन्नता नहीं पायी जाती। वास्तव में आदिवासी समाज मुख्यतः बन्धुत्व की भावना पर आधारित होता है। रक्त संबंध एवं वैवाहिक संबंध आदिवासी समुदाय के सभी सदस्यों को एक समान स्तर में संगठित कर देते हैं। इस समानता में विवाह एवं रक्त संबंधों में एकरूपता आ जाती है। इस प्रकार बन्धुत्व संबंध एकता कायम करने का एक महत्वपूर्ण अंग है और विभिन्न भागों में आदिवासियों के बीच परस्पर एक दूसरे के साथ जो लेने–देन रहते है, वे एकता की भावना को जागृत करते हैं। आदिवासी समाज कि यह संस्कृति उनकी संप्रभुता को निर्देशित करती है।

प्रायः भारत के सभी आदिवासी समाज में सभी सदस्यों को उत्पादन के साधनों का समान रूप से उपयोग करने का पूर्ण अधिकार होता है। इस कारण इन समाजों में शोषित वर्ग और शोषण करने वाले वर्ग जैसे वर्ग भेद नहीं मिलते है। जब आदिवासी आन्तरिक रूप से विभक्त होता है तो उसके भिन्न–भिन्न मान सामूहिक रूप से इन साधनों के स्थायित्व का अधिकार प्राप्त करते है न कि व्यक्तिगत रूप से बल्कि इन ग्रामसभाओं के सभी सदस्य समान रूप से अधिकारों का उपयोग करते है। इन कारणों से ही पता चलता है कि आदिवासी समाज में न तो कोई मालिक होता है, न कोई श्रमिक। इसमें सब सदस्य समान होते है और समाज में वर्ग विभिन्नता नही पायी जाती है।

आदिवासी समुदाय में माँदर का विशेष महत्व होता है। यह एक प्रकार का वाद्य यंत्र है जो किसी भी सांस्कृतिक उत्सव पर बजाया जाता है। कवि कहता है कि जो माँदर मेरे साँस से जुड़ी हुई हो उसे भला हम कैसे छोड़ दे। कविता के माध्यम से आदिवासी समाज में संस्कृति का महत्व समझ सकते हैं –

तुम कहते हो
छोड़ दूँ मैं माँदर
भला ऐसे कैसे छोड़ सकता हूँ इसे मैं?
दरअसल तुम नहीं जानते
जीवन का एक–एक पल
साँस की एक–एक धडकन
आँसुओं की एक–एक बूँद
प्यार का एक–एक क्षण
या खेतों में कुदाल चलाते, हल चलाते
पसीने की एक–एक बूँद
अन्न से भरे घर की सारी पूँजी
माँदर की थापो से है बँधी"[1]

आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण उसकी संस्कृति में मिलता है। आदिवासी समाज जल, थल और आकाश इन तीनों से जुड़ा हुआ समाज है । प्रकृति से जुड़ाव होने तथा उसे आत्मसात करने की जो प्रवृत्ति आदिवासी समाज में देखने को मिलती है और आज जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं वही असल में आदिवासी संस्कृति है। मानव समुदाय में जितनी भी सामाजिक परम्पराएँ हैं वह सभी संस्कृति का हिस्सा हैं। सामाजिक परम्पराएँ हमारे सामने लौकिक और अलौकिक दो हिस्सों में आते हैं। जिसे हम लोक साहित्य कहते हैं वह उसी संस्कृति का भिन्न अंग है। आदिवासियों के यहाँ लोक साहित्य बहुत समृद्ध है। लोक साहित्य अपनी मौखिक परंपरा में ही ज़्यादातर मिलता है। लोक साहित्य का मौखिक रूप में मिलना जो कि सम्पूर्ण आदिवासी समुदाय की संस्कृति को समेटे हुए है, संस्कृति की महत्ता को दर्शाता है।

आदिवासी समुदाय सांस्कृतिक आधार पर एकसमान होता है। सांस्कृतिक एकरूपता आदिवासी समुदाय में समाज स्तर पर ही आधारित है क्योंकि इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में समान अवसर प्राप्त होते हैं। अधिकांश आदिवासी समाज निरक्षर होने के कारण सामाजिक परम्पराओं व प्रथाओं पर मुख्यतः निर्भर होता है और इन परम्पराओं का लिखित साहित्य न होने के कारण इनमें केन्द्रीयता बनी होती है। आदिवासी समुदाय में किसी भी कार्य को करने के लिए

एक बनी बनाई परिपाटी होती है। यह नियम उनको अन्य समुदाय से अलग करता है। आगे चलकर उनकी दैनिक दिनचर्या का हिस्सा बन जाती है जिसे हम संस्कृति के नाम से भी जानते हैं।

आदिवासी समुदाय में संस्कृति के नाम पर परंपरराओं को थोपा नहीं जाता है। वास्तव में एक आदर्श जनजीवन के लिए संस्कृति आवश्यक होती है और संस्कृति ऐसी हो जो ढोने जैसी न लगे। आदिवासी संस्कृति की यही विशेषताएँ हैं। जब कोई बाहरी समुदाय अथवा व्यक्ति अथवा सरकार जिसे आदिवासी 'दिकू' कहते हैं, उनकी संस्कृति में हस्तक्षेप करने की कोशिश करता है तो आदिवासी समुदाय उसका पुरजोर विरोध करते हैं। आदिवासी नहीं चाहता कि कोई दिकू उसकी संस्कृति व सभ्यता में हस्तक्षेप करे।

आदिवासी कवि आदित्य कुमार मांडी नहीं चाहते हैं कि कोई उनकी संस्कृति में दखल दे। वे कहते हैं कि उन्हें उन्हीं की तरह ही रहने दे। 'आदिवासियत' कभी भी आभिजात्य वर्ग के समान नहीं हो सकता है। वह अपने आप में ही श्रेष्ठ है। अपनी कविता में लिखते हैं –

मुझे मेरी तरह ही रहने दो
मैं आदिवासी मेरा विचार आदिवासी
भाषा संस्कृति धर्म दर्शन इतिहास
भूगोल विज्ञान सब आदिवासी
तुझसे अलग है हमारी आदिवासियत ।
मैं तिलका मुरमू, बिरसा मुंडा
सिद्धों–कान्हू, चाँद भैरो, फूलो झानो
का वंशधर हूँ।"[2]

संस्कृति से वास्तविक तात्पर्य है जो सदियों से लोगों में परंपरा के रूप में मौजूद है। संस्कृति अच्छी भी होती है और खराब भी। किन्तु अपनी संस्कृति सभी को प्यारी होती है। यह किसी भी जनजाति या समाज की पहचान होती है। उसके द्वारा ही किसी भी समाज से परिचित हुआ जा सकता है। किसी भी समाज अथवा समुदाय में संस्कृति महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जितने अधिक समुदाय अथवा सभ्यताएं होंगी उतनी ही संस्कृतियाँ भी होंगी। भारत के पूर्वोत्तर राज्यों की बात करें तो असम में कछारी, गारो, राभा, तिवा, मिरी, आहोम, बोरो, खामती आदि अनेक आदिवासी समुदाय निवास करते हैं। इन

आदिवासियों की अगर संस्कृति की बात की जाय तो यह काफी अलग अलग हैं। किन्तु इनका मूल लगभग एक जैसा है। सम्पूर्ण रूप से इन्हें असमियाँ ही कहा जाता है। और इन्हें इसी संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है। संस्कृति से उस समाज की मूल चेतना का पता चलता है।

प्रायः आदिवासियों को उनकी पुरातन संस्कृतियों से जोड़कर उनको असभ्य और बर्बर कहा जाता है। आदिवासियों को बाहरी हस्तक्षेप बिलकुल पसंद नहीं है। स्पष्ट कहता है कि आप सभ्य हो तो बने रहो हम अपनी मूल संस्कृति में ही ठीक हैं।

वे हमें झोपड़ियों में सभ्यता सिखाने आए,
हम तुम्हें शान से जीना सिखाएँगे।
कुछ ही सालों में तुम्हें आदमी बनाएँगे।
उन्होने पहाड़ों को तोड़ा, जंगलों को काटा,
हमारी झोपड़ियों पर बुलडोजर चलाया।
पेड़ो के बदले थमा दी हमें दारू की बोतल
हम मजबूरी में मजदूर बन गए
साहूकारों के भाग्य खुल गए।
हमसे आजादी, अस्मिता व अस्मत ली छीन,
हमारे हाथ में थमा दी असभ्य होने की बीन।"[3]

प्रत्येक राज्य, राष्ट्र, समाज अथवा समुदाय की एक पृथक सामाजिक व्यवस्था होती है। उस पर स्थानीय इतिहास, भूगोल आदि का प्रभाव देखा जा सकता है। अब यही संस्कृति भेद का प्रश्न उठता है। एक समुदाय के लिए जो स्वीकृत आदर्श रूप संस्कृति है। दूसरा समुदाय उसे उसी आदर्श रूप में स्वीकार करे या न करे या स्वीकार करके भी उसे आदर्श के रूप में उतनी प्रतिष्ठा दे या न दे यह आवश्यक नहीं है। संस्कृतियों का विस्तार समुदाय के अपने मूल आदर्शों पर निर्भर करता है। संस्कृति किसी समुदाय की अंतश्चेतना या प्राण है। कोई भी समुदाय या सभ्यता संस्कृति विहीन हो ही नहीं सकता। सभी समुदायों के अपने आदर्श और मूल्य होते हैं जिन्हें वे सदियों से परंपरा के रूप में स्वीकार करते आ रहे होते हैं। संस्कृतियों के क्षीण होने पर आंतरिक संघर्ष शुरू हो जाता है। दो समुदायों के आपस में सम्मिलन से संस्कृतियों का आपस में संघर्ष होता है। किन्तु

इतिहास में समुदायों का मिश्रण होना लगभग अनिवार्य है। कोई भी ऐसी संस्कृति नहीं होगी जिनमें कुछ न कुछ परिवर्तन न हुआ हो। कोई भी आदिवासी समुदाय जितना अधिक शक्तिशाली होगा उसके आदर्श जितने अधिक मजबूत होंगे संस्कृति भी उतनी भी शक्तिशाली होगी। संस्कृति का स्वरूप एक नदी के जल के समान होता है जिसमें पुराना जल बहकर आगे चला जाता है उसकी जगह दूसरा जल ले लेता है।

किसी देश या समुदाय की संस्कृति के विकास में उसके धार्मिक विश्वासों का बहुत महत्व होता है । धार्मिक विश्वास किसी भी सभ्यता को बांधकर रखता है। वास्तव में सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे के पूरक होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। भारत के आदिवासी मूलतः प्रकृति धर्म से संबन्धित सरना धर्म को मानते हैं। यह उन्हें प्रकृति के संपर्क में लगातार रहने का मौका देती है। आदिवासियों में मनाया जाने वाला सरहुल पर्व प्रकृतिपूजा का सबसे बड़ा सूचक है। यह उनकी संस्कृति का हिस्सा है। धार्मिक कार्यों के फलस्वरूप वह सभी समूहिक रूप से बंधे भी होते हैं। आदिवासी समाज में किसी भी कार्य को करने का अपना एक अलग तरीका होता है। यह तरीके आदिवासियों के अलग–अलग समुदायों में अलग होते हैं। ज़्यादातर आदिवासी समुदाय प्रकृति पूजक होते हैं। संस्कृति अपने मूल अर्थ में ही संस्कारित होती है । जो कार्य हमें दैनिक जीवन में सिद्धि के निकट पहुंचाता है वही कार्य श्रेष्ठतम कहलाता है। वास्तव में वही संस्कृति है।

ईसाई और इस्लाम धर्म में मृतकों की पहचान व उनसे जुड़ी हुई लाइनों को पत्थरों में लिखकर मृतक के शव के पास गाड़ने की परंपरा आज भी मिलती है। वास्तव में यह परंपरा कभी आदिवासी समुदाय की संस्कृति का हिस्सा रही है। जिसे आदिवासी भाषा में 'मेगालिथ' कहा गया है। झारखंड, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में आज भी खोजने पर सैकड़ों मेगालिथ मिलते हैं जो आदिवासियों की अप्रतिम संस्कृति की पहचान कराते हैं। आदिवासी भाषा और संस्कृति पर विगत दो दशकों से भी अधिक समय से कार्यरत खड़िया आदिवासी समुदाय की चिंतक वंदना टेटे का कहना है कि 'मृतकों कि स्मृति में और अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर पत्थरों के स्मृति–चिह्न स्थापित करना हमारी परंपरा रही है। खड़िया समेत झारखंड के असुर, मुंडा, हो,

संथाल आदि सभी आदिवासी समुदायों में आज भी यह परंपरा चली आ रही है। यह हमें अपने पूर्वजों कि स्मृतियों से जोड़ता है, समुदाय का अलिखित इतिहास बताता है और हमारी सांस्कृतिक पहचान को अक्षुण्ण रखता है। आप किसी भी आदिवासी गाँव की कल्पना 'पत्थलगढ़ी', 'समनदिरि' और 'हड़गड़ी' के बिना नहीं कर सकते हैं।' यह परंपरा आज भी आदिवासी क्षेत्रों में दिखाई देती है। पत्थलगढ़ी की संरचना को लेकर अभी हाल के वर्षों में काफी विवाद हुआ था। एक कविता के माध्यम से समझते हैं –

इन मृत पत्थरों पर जीवित हैं
हमारी सैकड़ों पुश्तों की विरासत
लेकिन सरकारी पट्टों पर
इनका कुछ पता नहीं है
ये हमारे घर हैं
और इस तरह
हम बेघर हैं सरकारी पट्टों पर,
हमारी विरासत पर दखल हुई
सरकारी पट्टों की
एक बार फिर हम लड़े
अपनी तदाद से
हथियार बंद राजाओं के खिलाफ
समय की पगडंडियों पर चलते हुए
इसी तरह इतिहास रचते गए
पुरखों के नाम पत्थर गाड़ कर
हम तैयार होते गए
नए मोर्चों पर लड़ाई के लिए,
ये सरकारी चेहरे की तरह पत्थर नहीं हैं
इनमें जंगल के लिए लड़ते हुए
एक पेड़ की कहानी है"[4]

संस्कृति का महत्व उनकी सामाजिक जनजीवन को प्रभावित करती है। आदिवासी कवयित्री डॉ. हीरा मीना जी अपनी कविता में संस्कृति को व्याख्यायित करते हुए लिखती हैं –

"जीवन को सजा सँवारकर परिष्कार करती है, संस्कृति !!

मानवता के अनमोल जीवन मूल्यों का संचार करती है, संस्कृति !!

वसुधैव कुटुंबकम की अमृत जीवनधारा का नवनिर्माण करती है, संस्कृति !!

मानव के जन्म से लेकर आजीवन संस्कारों के साथ रहती है, संस्कृति !!

मानवता का पर्याय है नदी, नारी और संस्कृति !!"[5]

भारत की आदिवासी संस्कृति और उनकी परंपराएँ व प्रथाएँ भारतीय संस्कृति और सभ्यता के लगभग सभी पहलुओं पर व्याप्त हैं। संस्कृतियों के अपने कुछ लक्षण होते हैं जो समाज के समानान्तर ही चलते हैं। संस्कृति के आंतरिक और बाह्य दोनों स्वरूपों के अध्ययन के फलस्वरूप उसके कुछ लक्षण परिलक्षित होते हैं।

1. संस्कृति आदर्शात्मक होती है।
2. संस्कृति संचारशील होती है।
3. संस्कृति सीखे हुए गुण है।
4. संस्कृति समाज की कुछ आवश्यकताओं को पूर्ण करती है।
5. संस्कृति केवल मानव समाजों में पाई जाती है।
6. संस्कृति वैयक्तिक नहीं बल्कि सामाजिक है।
7. संस्कृति में एकीभूत होने का गुण है।
8. संस्कृति में उपायोजन की योग्यता होती है।

संस्कृति के ये सभी लक्षण सामाजिक प्रतिमानों को निर्देशित करते हैं। विभिन्न सामाजिक क्रियाकलाप संस्कृति के तत्व बन जाते हैं। संस्कृति से तात्पर्य मानव समुदाय के नैतिक, सामाजिक और शैक्षिक श्रेष्ठताओं से है। जो मानव समुदाय को संस्कारित करती है । यही वजह है कि अनेक आदिवासी समुदाय में भिन्न–भिन्न संस्कृतियाँ श्रेष्ठत्व का भाव लाती हैं। संस्कृति में वह सबकुछ शामिल है जो समाज में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिया जाता है। जैसे ज्ञान, धार्मिक विश्वास, कला, कानून, नैतिक नियम, रीति–रिवाज, तौर–तरीके, साहित्य, संगीत, भाषा इत्यादि। यह सभी प्रवृत्ति आदिवासी संस्कृति में पाई जाती है। समाजशास्त्री बोगार्डस के शब्दों

में 'संस्कृति एक समूह के समृद्ध रीति–रिवाजों, परम्पराओं और चालू व्यवहार प्रतिमानों से बनती है। संस्कृति एक समूह का मूलधन है। वह मूल्यों की एक ऐसी पूर्ववर्ती समष्टि है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पैदा होता है। वह एक माध्यम है जिसमें व्यक्ति पैदा होते हैं और विकसित होते हैं।'

वास्तव में आदिवासी संस्कृति का दायरा बहुत व्यापक है। इसमें चित्र, स्थापत्य, मूर्ति, संगीत आदि कलाओं, साहित्य से लेकर सामान्य खान–पान, रहन–सहन, काम–काज, रीति–रिवाज, भाषा–बोली सहित तमाम दैनिक क्रियाकलाप जो आदिवासी समाज द्वारा जीवन में प्रयुक्त व्यवहार शामिल हैं। आदिवासी संस्कृति के ये सभी घटक संबन्धित समुदाय की भौतिक अवस्थाओं से निर्मित होते हैं। भौगोलिक स्थिति एवं उत्पादन संबंध किसी भी संस्कृति के स्वरूप निर्माण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसी विशेष भौगोलिक स्थिति और उत्पादन संबंध के अंतर्गत जीवन जीने वाले लोगों में संस्कृति एक प्रकार की होती है, हालांकि उस विशेष भौगोलिक स्थिति में भी उत्पादन संबंधों के आधार पर संस्कृति के अलग–अलग स्तर होते हैं।

आदिवासी संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, भाषा शैली, कला–कौशल को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक पहलुओं पर जाना होगा तथा साहित्यों में इनके दर्शन को ढूँढना होंगा। आदिवासियों के साहित्यों में इनके वास्तविक गूढ़ दर्शन दुर्लभ है। आज आवश्यकता है उनके संरक्षण की । आदिवासी समाज से पृथक होकर कोई भी समुदाय आदिवासी समाज की परिभाषा को पूर्ण नहीं करता है, बल्कि ऐसी स्थिति में साहित्य, सामाज की परिभाषा को तोड़ कर बिखेर देता है। देश के वर्ग विशेष द्वारा बनाई गई वर्ण और जाति व्यवस्था इसके सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है। दूसरों ने जो रास्ता हमें तोड़ने के लिए बनाया उसे बुद्धिजीवी वर्ग सहर्ष स्वीकार कर उसी रास्ते पर बढ़ रहे हैं। इस स्थिति के कारण क्षेत्रीय साहित्यकार और उनके साहित्य समाज को मार्गदर्शन करने के उत्साह में सम्पूर्ण आदिवासी समाज को टुकड़ों में तोड़ने के लिए उत्तरदायी प्रतीत हो रहें हैं।

वास्तव में आदिवासी समाज का सबसे वृहद, सम्पन्न भू–भाग

रहा, सदियों से उसकी अपनी बोली भाषा और लिपि भी रही, जिसके माध्यम से विचारों का आदान–प्रदान, व्यापार विनिमय करते रहे, अपनी प्राकृतिक एवं समृद्धिपूर्ण संस्कृति रही, फिर भी आदिवासी समुदाय अपनी समृद्धि को बचाए रखने और विकास की ओर आगे बढ़ने से रोकने के लिए कौन सी परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं। इन सभी तथ्यों व परिस्थितियों पर अध्ययन व चिंतन की आवश्यकता है।

आदिवासी समाज आज भी जोर देकर कहता है कि वह सदियों से प्रकृति और अपने पुरखों का पूजक रहा है और आज भी है। वह प्रकृति पूजा को अपना धर्म मानता रहा है और है। वह सदियों से अपनी प्रकृति सम्मत सर्वोच्च मानव संस्कृति और सभ्यता का वाहक रहा है और है। वह अपनी बोली भाषा पर सदियों से अटल रहा है आज भी है, किन्तु समाज का धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्वसाहित्य और साहित्यों में एकरूपता तथा प्रचार–प्रसार के अभाव में धीरे–धीरे सबकुछ विलुप्त होता जा रहा है। साहित्य की कमी ने हमारे सारे समृद्धि और विकास के रास्तों को अवरुद्ध कर दिया और दूसरों की साहित्यिक तथा धार्मिक अंधानुकरण ने गुलाम बना दिया।

किसी भी विशिष्ट वस्तु, प्रथा, परंपरा आदि का अपना एक अलग महत्व होता है । यदि यह कहा जाये कि आदिवासी संस्कृति कि नींव पर ही भारतीय संस्कृति खड़ी है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बल्कि इससे भारतीय संस्कृति की विशालता का पता चलता है। कवयित्री ने इसका जिक्र अपनी कविताओं में भी किया है –

दुनिया को सिखाने वाले
क्यों ताक रहा है
मुंह किसी का
पर्वत तुम्हें पुकार रहा है
सुनने को गीत तरस रहा है
मतवाला हो जा धुन में अपनी
झूम–खूम गा गली–गली।[6]

आदिवासी समुदाय में पलायन एक बड़ी समस्या रही है जो आज भी अनवरत जारी है। भूमंडलीकरण की चकाचौंध ने आदिवासी युवकों को अपनी मूल संस्कृति से अलग कर रही है। आदिवासियों में धूमकुड़िया का आयोजन होता है जिसमें प्रेम में रहने वाले

लड़के–लड़की एक साथ रह सकते हैं। जिसे आज का आभिजात्य वर्ग लिव इन रिलेशनशिप का नाम देकर अपने आपको सभ्य होने का दावा करते हैं। दरअसल यह आदिवासियों की पुरानी परंपरा है। इसे घोटूल के नाम से भी जाना जाता है। इसीलिए आदिवासी अपनी संस्कृति में ही बना रहना चाहता है। आगस्तीन महेश कुजूर लिखते हैं–

अखड़ा धूमकुड़िया में संगियों संग
करम सरहुल राग सुनाया
दोन डांड़ हल चलाते समय
मीठे प्रेम भरे गीत गाया
फिर क्यों आज दूर देश
चले आ रहे हो, लौट आओ
मत जाओ परदेश"[7]

कवि को अपनी संस्कृति पर गर्व है। उसे किसी अन्य की संस्कृति नहीं चाहिए। वह गुहार लगा रहा है अपने सगा जनों से की पुरखों की बातों को मत भूलो, बल्कि उन्हें पढ़ो और वापस अपनी संस्कृति को अपनाओ। सांस्कृतिक महत्व का अंदाजा लगाया जा सकता है कि कवि आगाह कर रहा है कि हमें उधार की सभ्यता नहीं चाहिए।

देखता हूँ समाज को भटकती राह में।
अपने समाज के स्वादिष्ट रीत नीत
आज भूल रहे हैं पुरखों की बातें
चुपचाप चले जा रहे हैं दूसरों के रिवाज पर
बल्कि उधार में दूसरे सभ्यता को अपनाते हुए
देखता हूँ"[8]

आदिवासी संस्कृति सहअस्तित्व के दर्शन को स्वीकार करती है। लेकिन आज की ग्लोबल दुनिया एकल हो गई है। सभी संस्कृतियाँ एक दूसरे को पछाड़ने में लगी हुई हैं। सवाल यह है कि असमानता और भेदभाव से जूझती दुनिया को क्या एकदूसरे को पछाड़ कर ही बेहतर, समतामूलक और इंसानी बनाया जा सकेगा। कवि अपनी पुरखौती साहित्य और संस्कृति के प्रति लौटना चाहता है। कवि अपनी मूल संस्कृति की ओर लौटना चाहता है। वह अपील कर रहा है कि

मुझे अपने जंगल, पोखर, पेड़–पौधों की तरफ लौटा दो। पहाड़ी संस्कृति ही उसे अधिक सुख प्रदान करती है।

हमें लौटा दो
हमारे पुरखों की सम्पदा
झरने–सोते
माटी–पानी, पोखर–तालाब
मुक्त हवा खुला आकाश
हमारे हिस्से की रोशनी
पेड़–पौधों का प्यार
लता–बेलियों की ममता
जंगल–पहाड़ का आधार"[9]

आदिवासी समुदाय के अलावा आज के दौर में भारतीय संस्कृति का नाम लेते ही हम अमूमन वैदिक कालीन संस्कृति से ही उसका अर्थ लगा लेते हैं। जबकि भारत वास्तव में विविधताओं वाला देश है। यहाँ हजारों संस्कृतियाँ हैं। जो अपने आप में अलग महत्व रखती है। प्रत्येक धर्म की अलग अलग संस्कृति है। उसी प्रकार आदिवासी समुदाय भी बाह्य तौर अपने को आदिवासी धर्म का ही मानता आया है। आज भी उसकी मांग जारी है की उसे तत्कालीन सविधान द्वारा प्रदत्त किसी भी धर्म में रहना स्वीकार्य नहीं है। संस्कृति का चलन यहीं से शुरू हो जाता है। आदिवासी हमसे अलग नहीं हैं। आज की संस्कृति के निर्माण में आदिवासियों की महत्वपूर्ण भूमिका है इस बात को समझने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 36
2. आदित्य कुमार मांडी, जंगल महल की पुकार, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, झारखंड, पृष्ठ संख्या 15
3. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 65

http://www.hindisamay.com/content/5519/1/%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A5%81%E0%A4%9C%E0%A4%B2%E0%A5%81%E0%A4%97%E0%A5%81%E0%A4%A8%E0%A4%95%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A4%BE%E0%A4%8F%E0%A4%81%E0%A4%B8%E0%A4%B8%E0%A4%A8%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%80.cspx
4. डॉ. हीरा मीना, लोक की पुकार, पंकज बुक्स, नई दिल्ली
5. विश्वासी एक्का, लक्षमनिया का चूल्हा, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, झारखंड, पृष्ठ 41
6. आगस्तीन महेश कुजूर, पंप पून (पुष्पमाला), प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, झारखंड, पृष्ठ 20
7. आगस्तीन महेश कुजूर, पंप पून (पुष्पमाला), प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, झारखंड, पृष्ठ 32
8.भगवान गव्हाड़े, आदिवासी मोर्चा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 88